प्रथम अध्याय

शोध परिचय

अध्याय एक

शोध परिचय

1.0 प्रस्तावना

गुरू ब्रम्हा गुरू विष्णु गुरू देवो महेश्वरा।
गुरू साक्षात् परब्रम्हा तस्मै श्री गुरूवे नमः।।

शिक्षक समाज और राष्ट्र के निर्माण का मूलाधार है। शिक्षक पर ही समाज की उन्नति निर्भर होती है। भवन निर्माण में जो स्थान ईटों का है, राष्ट्र निर्माण में वही स्थान शिक्षक का है क्योंकि शिक्षक बालकों को समुचित शिक्षा प्रदान कर देश के भविष्य उज्जवल करता है।

भारतीय समाज में गुरू का सर्वोच्च स्थान है क्योंकि वह शिक्षा के माध्यम से समाज को विकासोन्मुख बनाता है। अतः शिक्षा के उद्देश्य देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं, जो समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं के पूरक होते है। शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि परिस्थितियों के अनुरूप उचित निर्णय लेकर सही मार्ग का चयन करें और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अवसरों पर सही विकल्प का चुनाव कर सके।

शिक्षक वह धुरी है जिसके चारों और शैक्षिक गतिविधियां क्रियाशील रहती हैं। उसे "राष्ट्र" का निर्माता कहा जाता है। किसी भी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में सबसे महत्वपूर्ण स्थान शिक्षक का होता है। शाला की उन्नति अथवा विकास के लिए उचित पाठ्यक्रम, श्रेष्ठ पाठ्यपुस्तक, उत्तम शिक्षा साधन तथा उपयुक्त शालागृहों की आवश्यकता तो है परन्तु उससे कहीं ज्यादा आवश्यकता है उपयुक्त अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं की। वे ही शिक्षा पद्धति को चलाते है। अच्छे शिक्षकों के अभाव में किसी भी देश की शिक्षा पद्धति निर्जीव और निस्तेज हो जाती है। इसी तथ्य को समझकर प्राचीन

भारत में शिक्षकों को एक विशिष्ट स्थान था। लेकिन अंग्रेजों के शासन काल में अध्यापकों की स्थिति सोचनीय हो गयी। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकार द्वारा नियुक्त राधाकृष्ण आयोग, मदुलियार आयोग तथा कोठारी आयोग आदि ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों की आर्थिक, सामाजिक और व्यावसायिक दशाओं को सुधारे बिना शिक्षक का उत्तरदायित्व अपूर्ण ही रहेगा। देश के सारे शिक्षा शास्त्री विद्वान, राजनीतिज्ञ और प्रशासक यह स्वीकार करते है कि देश जिस संकटकालीन दौर से गुजर रहा है उसमें अध्यापक ही उसे सम्बल प्रदान कर सकते है।

बालक के सर्वांगिण विकास में शिक्षक को बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है। शिक्षक ही वास्तव में बालक का समुचित शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास कर सकता है। विद्यालय प्रांगण में भी शिक्षक को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। सम्पूर्ण विद्यालय योजनाओं को वही व्यावहारिक रूप देता है। अच्छी से अच्छी शिक्षण पद्धति प्रभाव रहित हो जाती है यदि शिक्षक उसे सही ढ़ंग से प्रयोग न करे। जिस प्रकार विद्यालय जीवन में प्रधानाध्यापक मस्तिष्क के रूप में होता हैं। शिक्षक आत्मा स्वरूप होता है। आत्मा बिना शरीर (विद्यालय) निर्जीव होता है। शिक्षक ही विद्यालय जीवन का गतिदाता है।

उपयुक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालय जीवन में शिक्षक को अति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शिक्षक को विद्यालय जीवन में ही क्यों, सम्पूर्ण समाज में अति महत्वपूर्ण एवं सम्मानप्रद स्थान प्राप्त है। यह महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट होता है।

भविष्य निर्माता :–

डॉ. जाकिर हुसैन के अनुसार "वास्तव में शिक्षक हमारे भाग्य–निर्माता है। समाज अपने विनाश पर उनकी उपेक्षा कर सकता है।"

प्रो. हुमायुं कबीर ने लिखा है– "शिक्षक राष्ट्र के भाग्य निर्णायक होते है वे ही राष्ट्र निर्माण की कुंजी है।

राष्ट्र का मार्गदशक :-

डॉ. राधाकुष्णन के अनुसार - "समाज में अध्यापक स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्परायें और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केन्द्र है और सभ्यता के विकास को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है" वह सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षक तथा परिमार्जनकर्ता है। वह बालक का ही मार्गदर्शक नहीं वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र का मार्गदर्शक है।

राष्ट्र की उन्नति में स्थान :-

अध्यापक का राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान है। कहा भी जाता है कि ''एक आदमी हत्या करके एक जीवन का अन्त करता है किन्तु शिक्षक गलत शिक्षा देकर सम्पूर्ण परिवार की हत्या करते है तथ सम्पूर्ण राष्ट्र का अहित करते है'' शिक्षक अपने समुचित शिक्षण से ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करते है जो राष्ट्र की प्रगति के आधार होते है।

संस्कृती का पोषक :-

गारफोर्थ के शब्दों में "शिक्षक के माध्यम से ही संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है, समाज की परंपराये नवयुवको को ज्ञात होती है तथा वही नये एवं रचनात्मक उत्तरदायित्व ऊर्जायें छात्रों को सौंपता है'' शिक्षक संस्कृति का परिमार्जक एवं रक्षक है। बदलते सामाजिक परिस्थिति के अनुसार शिक्षा महानुभावों तथा उनके आयोगों द्वारा शिक्षा में सभी धर्म, पंथ, संप्रदाय के लोगों को एक साथ शिक्षा ग्रहण करने के अवसर प्रदान किये हैं, अपितु यह संस्कृति को पोषक भी है। भारत को तथा जनतांत्रिक एवं साम्प्रदायिक बनाने हेतु भी सहायता करते हैं।

शिक्षा का रक्षक :-

समाज में प्रचलित शिक्षा का रक्षक भी शिक्षक ही होता है। वास्तव में कोई भी शिक्षा व्यवस्था शिक्षकों के स्तर से आगे नहीं जा सकती है। जिस

स्तर के शिक्षक होंगे, उसी स्तर की शिक्षा व्यवस्था होगी। शिक्षा की गुणात्मक स्थिति शिक्षकों की स्थिति तथा उनके गुणात्मक पहलू पर निर्भर है।

वास्तव में बालक के शारीरिक मानसिक तथा सामाजिक व नैतिक विकास में शिक्षक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। वह अपने सदप्रयासों से बालक का सफल मार्गदर्शन कर उसके व्यक्तित्व का संतुलित विकास कर उसे सफल नागरिक बनाता है। इस रूप में वह न केवल बालक का ही कल्याण करना है वरन् समूचे समाज तथा राष्ट्र की भलाई करता है। इसलिए तो भारतीय दर्शन में उसे ब्रम्हा का रूप दिया गया है। यह ब्रम्हा स्वरूप शिक्षक सृजनात्मक तथा विध्वंसात्मक शक्तियों का प्रदाता तथा स्त्रोत है। इसी की प्रदत्त शिक्षा के आधार पर हम कल्याणकारी तथा विनाशकारी शक्तियों का निर्माण करते है। इसीलिए कहा जाता है कि यदि विनाश पर आ जाये तो शिक्षक एक चिकित्सक, भवन निर्माता तथा पुजारी से भी अधिक विनाश कर करता है। एक अध्यापक के प्रभाव का कहां अंत होगा, कहा नही जा सकता क्योंकि वह अपने छात्रों पर अपने प्रभावों की अमिट छाप छोड़ देता है।

अध्यापक के उत्तरदायित्व निम्नलिखित है :-

1. छात्रों का शैक्षिक एवं चारित्रिक विकास करना।
2. छात्रों का व्यावसायिक विकास करना।
3. सामाजिक एवं नागरिकता की शिक्षा देना।
4. पाठ्यक्रमों सहगामी क्रियाओं का संचालन करना।
5. छात्रों के कार्यो का मूल्याकंन करना।
6. कक्षा का प्रबन्ध एवं समुचित शिक्षण देना।
7. शिक्षक योग्य और चरित्रवान होना चाहिए।
8. छात्रों में परिश्रम और शोध की जिज्ञासा पैदा की जानी चाहिए।

LIBRARY

1.1 भारत में शैक्षिक आयोग

1.1.1 राधाकृष्णन – आयोग (1946–48)

सैडलर आयोग के अनुसार शिक्षा के विकास के लिये अनुदान राशि को बढ़ दिया गया, जिसके के कारण अनेकों शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गई ओर पुराने विश्व विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की दशा सुधारने तथा शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये अनुदान दिये गये, लेकिन शिक्षा के स्तर की गिरावट बराबर बनी रही जो कि सरकार तथा जनता के लिये चिंता का विषय था। दूसरा कारण वह यह था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थिति बदल गई थी इस बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुये शिक्षा के लिये नवीन योजना की आवश्यकता थी। ''केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड और अंतर विश्वविद्यालय शिक्षा–परीषद ने सरकार से एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त करने की सिफारिश की। इन सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने 9 नवम्बर 1948 को डॉ. एस. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय–शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। अध्यक्ष के नाम पर इस आयोग को राधाकृष्ण कमीशन भी कहा जाता है।

(बी.पी. जौहरी तथा पी.डी. पाठक ''भारतीय शिक्षा का इतिहास'' आगरा, वमोद पुरूक मंदिर, 197, पृष्ठ संख्या–409)

आयोग की सिफरिशें :–

आयोग ने विश्वविद्यालय शिक्षा के लिये अनेको सुझाव दिये। आयोग ने भारतीय संविधान की प्रस्तावना को ध्यान में रखते हुये विश्वविद्यालयों को ये सुझाव दिये कि वे छात्रों में समता, स्वतंत्रता, न्याय तथा बन्धुत्व की भावना पैदा करे और वे भारत की संपूर्ण प्रभूत्व–सम्पन्न लोकतंत्रामक गणराज्य के मूल तत्वों की शिक्षा विद्यार्थियों को दे तथा उनमें अपनी संस्कृति विरासत के प्रति लगाव और आदर्श की भावना पैदा करे। विश्वविद्यालय को

अंतराष्ट्रीय सदभावना के विकास के लिये भी कार्य करना चाहिये। आयोग ने शिक्षक-प्रशिक्षण तथा शिक्षकों के लिये अच्छी वेतनमान की भी सिफारिश की।

अध्यापकों का महत्व और उत्तरदायित्व :-

अध्यापको के महत्व और उत्तरदायित्व के विषय में आयोग की यह राय थी-

1. शिक्षक, योग्य और चरित्रवान होना चाहिये।
2. शिक्षकों को अपने विषय का समुचित ज्ञान होना चाहिए।
3. शिक्षकों के द्वारा छात्रों में परिश्रम और शोध की जिज्ञासा पैदा की जानी चाहिये।

1.1.2 कोठारी कमीशन (1964-66) :-

14 जुलाई 1964 को भारत सरकार ने ''विश्वविद्यालय अनुदान आयोग'' के अध्यक्ष प्रो. डॉ. एम. कोठारी की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इसे कोठारी कमीशन भी कहा जाता है।

आयोग की नियुक्ति के संबंध में सरकार का कहना था कि शिक्षा के विकास में कार्य हुआ है लेकिन समय की मांग के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास नही हुआ है। आज भी शिक्षा के विकास में विचार एवं कार्य में महान अंतर है। राष्ट्रीय एकता, सामाजिक परिवर्तन धर्म निपरपेक्षता, निर्धनता की समाप्ति, औद्योगिक एवं कृषि का विकास, आधुनिक विज्ञान की प्रगति संगठन तथा संतुलित शिक्षा व्यवस्था से ही संभव है। ''यदि भारतीय प्रजातंत्र को वास्तविक बनाना है तो बहुसंख्यक लोगों को भारत तथा विश्व की जानकारी होनी चाहिए'' संविधान में प्रदत्त 14 वर्ष तक बच्चो के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा निरक्षरता को दूर करना, बढती हुई बेरोजगारी आदि समस्याओं का अभी तक कोई समाधान नी हुआ हैं इसलिए शिक्षा प्रणाली के हर पहलु की जांच की जाय जिससे कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आधारशिला रखी जा सके। प्राथमिक शालाओं की शिक्षा स्तर है तो

माध्यमिक शालायें अच्छी होगी, यदि माध्यमिक शालाओं की शिक्षा उत्तम है तो विश्वविद्यालय की शिक्षा उत्तम और प्रगितशील होगी। इसलिए शिक्षा के संपूर्ण क्षेत्र की जांच के लिए शिक्षा आयोग की नियुक्ति करने का निश्चय किया।

शिक्षा आयोग के सुझाव :-

सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए शिक्षा उपयुक्त और शक्तिशाली साधन है, इसके द्वारा ही राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए आयोग ने शिक्षा सुधार के लिए निम्नलिखत सुझाव दिये है।

शिक्षा व उत्पादन :-

विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान की शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाय और कृषि एवं उत्पादन कार्यो में प्रवेश होना चाहिए। उच्च शिक्षा में कृषि शिक्षा तथा व्यवसायिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाय। इसी तरह माध्यमिक शिक्षा में व्यवसायिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय।

सामाजिक व राष्ट्रीय एकता :-

सामान्य विद्यालय प्रणाली, को राष्ट्रीय लक्ष्य माना जाय और इस प्रणाली को 20 वर्षो में पूर्ण किया जाय तथा शिक्षा के सभी स्तरों पर राष्ट्रीय और सामाजिक सेवा सभी छात्रों के लिए अनिवार्य कर दिया जाय।

अध्यापकों की स्थिति :-

शिक्षा के क्षेत्र में योग्य और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिए आयोग ने यह सुझाव दिया कि अध्यापकों के वेतनमान में उचित सुधार होने चाहिए। अच्छे वेतनमान से ही अध्यापकों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार हो सकता है। अध्यापकों के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय और प्रशिक्षण काल में अध्यापकों निश्चित आर्थिक सहायता

दी जाय और प्रशिक्षण की नवीन विधियों को जानकारी अध्यापको को करायी जाय।

शैक्षिक अवसरों की समानता :-

आयोग के अनुसार सभी धर्म, वर्ग, जाति के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर मिलने चाहिए जिससे कि पिछड़े वर्ग के (अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग) बच्चे समान रूप से शिक्षा प्राप्त कर सके, क्योंकि ''प्रजातंत्र का मूल सार है कि सभी नागरिक कानून की दृष्टि से समान है। यह स्पष्ट है कि इस समानता का कोई अर्थ नही जब तक कि उनको अपनी अन्तरनिहित क्षमता के विकास के समान अवसर प्राप्त नही है यदि प्रजातंत्र को वास्तव में प्रभावशाली बनाना है और प्रत्येक व्यक्ति को सम्पूर्ण विकास की गारंटी देनी है तो शिक्षा को निःशुल्क और व्यापक बनाना होगा।

अध्यापक शिक्षा :-

अध्यापक शिक्षा के विषय में आयोग की राय थी कि शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए योग्य और अनुभवी शिक्षकों का होना आवश्यक है इसलिए अध्यापक शिक्षा के लिए महाविद्यालय खोले जाय और उन्हें अति-आधुनिक शिक्षा विधि का प्रशिक्षण दिया जाय। पुराने विद्यालयों में सुधार किया जाय। शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहित किया जाय। अध्यापकों को व्यवसायिक तकनीकी तथा इंजीनियरिंग की परीक्षा का उच्च कोटि का प्रशिक्षण दिया जाय जिससे की प्रशिक्षित अध्यापक अपने विद्यार्थियों को उच्च कोटि की परीक्षा दे सके।

1.1.3 राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 1986

प्रस्तावना :-

प्रारंभ से लेकर आज तक शिक्षा का विशेष महत्व रहा है। हर देश ने अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहचान के लिए शिक्षा नीतियों में परिवर्तन

और विकास किया है। हमें भी इस संदर्भ में पुनः विचार करना होगा। आर्थिक, तकनीकी, चिकित्सा आदि का अधिकतम लाभ सभी वर्गो का मिलना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा मार्गदर्शक हो सकती है। सम्पूर्ण देश में सामान्य शिक्षा पद्धति को स्वीकार किया है।

शिक्षा का भूमिका तथा मूलतत्व :-

राष्ट्रीय संदर्भ में शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य है। शिक्षा संकीर्णता को कम करती है और मानसिक स्वतंत्रता एवं भावनात्मक विकास, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता तथा जनतंत्रा के विकास की प्रेरणा देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का यह मूल आधार है।

शिक्षक :-

1) शिक्षकों का चयन उनकी योग्यतानुसार किया जाएगा। और उनकी पदोन्नति, वेतन, भत्ते, स्थानांतरण आदि के लिए मार्गदर्शिका तैयार की जाएगी।

2) प्राथमिक स्कूल शिक्षक तथा अनौपचारिक एवं प्रौढ़ शिक्षा में लगे व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाएगी डाइट तथा एन.सी. ई.आर.टी. जैसी संस्थाऐ शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करेगी।

शिक्षा का प्रबंध :-

1) शिक्षा के प्रबंध एवं नियोजन की व्यवस्था में अमूल परिवर्तन करना होगा।

2) सेन्ट्रल एडवायजरी बोर्ड ऑफ एजूकेशन के शैक्षिक विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

3) जिला तथा स्थानीय स्तरों पर शिक्षा के विकास के लिए संस्थाएं स्थापित की जाएगी।

योजनाओं का क्रियान्वयन

नई शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा की गतिशीलता पर जोर दिया गया है। इसके अंतर्गत कार्यक्रम तथ क्रियान्वयन निम्न प्रकार से है।

अध्यापक प्रशिक्षण :–

योजनाओं के क्रियान्वयन के तहत अनुच्छेद 5–31 में अध्यापक प्रशिक्षण के बारे में कहा गया है कि वर्तमान प्रणाली में शिक्षण प्रशिक्षण का प्रावधान नही है। इसके लिए निम्नांकित गतिविधियां संचालित की जायेगी।

1) सभी नए प्रवक्ता स्तर के प्रवेशर्थियों के लिए शिक्षण विधियों, शिक्षण कला एवं शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अभिनंदन कार्यक्रम।

2) शिक्षकों के लिए रिफ्रेशर कोर्स प्रत्येक शिक्षक के लिए 5 वर्ष में एक बार अनिवार्य।

3) विश्वविद्यालय और कालेजों के संसाधन जुटाकर अभिनंदन कार्यक्रम।

4) शिक्षकों को सेमीनार में भाग लेने हेतु प्रोत्साहन।

5) इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय द्वारा शिक्षकों में प्रोत्साहन हेतु विशेष कार्यक्रम।

6) वेतनमान संशोधन समिति की सिफारिशों की क्रियान्वयन हेतु जांच।

7) समान योग्यता परीक्षा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति।

8) अध्यापक निष्पति मूल्यांकन की विधि का विकास।

9) विश्वविद्यालयों की प्रबंध प्रणाली का अध्यापकों की अधिक भागीदारी की दृष्टि से पुर्नगठन।

(डॉ वरिष्ठ एवं डॉ शर्मा''भारतीय शिक्षा की नई दिशा'' मेरठ, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1990, पृष्ठ संख्या – 44)

1.2 शिक्षक और अध्यापन व्यवसाय :-

शिक्षा में शिक्षक एवं अध्यापन व्यवसाय एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिनको अलग करना असंभव है। अध्यापन का अर्थ है कि छात्रों को कुछ विशिष्ट विषयों का ज्ञान प्रदान करना है। शिक्षा में वस्तुतः हम इस ज्ञान को सम्मिलित कर लेते है किन्तु यही तक सीमित नहीं रहते शिक्षा एक त्रिधुवी प्रक्रिया है असके तीन मुख्य घटक होते हैं। अध्यापक–पाठ्यक्रम–छात्र शिक्षा में शैक्षिक क्रियायें जो पाठ्यक्रम से संबंधित होती है तथा सहशिक्षा क्रियायें जिसमें छात्रों के अध्यापकों के अनुभव विश्व तथा व्यक्तित्व के घटकों से संबंधित क्रियायें होती है। शिक्षा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है और अध्यापकों को सदा केवल विषयों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर बालकों के सर्वांगीण विकास में योगदान दने के लिये तत्तपर रहना चाहिए। सर्वांगीण विकास का अर्थ होता है ज्ञानत्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्षों का विकास करना। यही शिक्षा के उद्देश्य होते है। भावात्मक पक्ष सबसे महत्वपूर्ण समझा जाता है। इसका विकास करना कठिन होता है तथा समय भी अधिक लगता है। इसके विकास के लिए संवेदनशीलता भी चाहिए। सर्वप्रथम भावना का विकास करने का प्रयास किया जाता है जब भावनाओं में स्थिरता तथा गहनता हो जाती है तब भावनायें अभिवृत्ति का रूप लेती है।

शिक्षक का कार्य निष्पादन शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण निवेश है। शिक्षकों की चयन विधि, भर्ती और गुणवत्ता की दृष्टि से समय की आवश्यकताओं के अनुरूप नही रही है। शिक्षक से बड़ी आशा लगाई जाती है। तथापि नौकरी की दृष्टि से शिक्षा का व्यवसाय अन्तिम विकल्प माना जाता है। इसलिए हमारी विसंगति यह है कि हमारे पास श्रेष्ठ ग्रंथ एवं अनुसंधान तो उपलब्ध है परंतु शिक्षक उदासीन है।

कही ऊपर के कथन को पूरे शिक्षक वर्ग की बुराई न समझ लिया जाए इसलिए यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्तमान पद्धति में जो भी गुणता दिखाई देती है वह वास्तव में ऐसे बहुत से शिक्षकों की प्रतिबद्धता

परिश्रम तथा नवत्रवर्तन की क्षमता के ही कारण है जो अपने शिष्यों के कल्याण के लिये पूरी तरह प्रतिबद्ध है। राधाकृष्णन (1966) के अनुसार "समाज में अध्यापक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परम्पराये और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केन्द्र है और सभ्यता के विकास को प्रज्जवलित रखने में सहायता देता है।"

इसलिए किसी भी राष्ट्र का हित उस राष्ट्र के अध्यापक के हित पर निर्भर है। एक अध्यापक अपने जीवन काल में हजारों विद्यार्थियों को शिक्षित करता है अतः अध्यापक ही हमारे भविष्य का संरक्षक है और इसलिए अध्यापक की ओर कोई भी ध्यान देना अपने भविष्य की ओर ध्यान देना है। यह निर्विवाद है कि शिक्षा के स्तर और राष्ट्रीय विकास में शिक्षा के योगदान को जितनी भी बाते प्रभावित करती है, उनमें शिक्षकों के गुण, उनकी क्षमता और उनका चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है अतः आवश्यक है कि योग्यत अध्यापक हो, उन्हे सर्वोत्तम व्यावसायिक साधन उपलब्ध करिये जाये ओर ऐसी संतोषप्रद स्थितियां बनायी जायें जिनमें वे प्रभावी ढंग से काम कर सकें।

अध्यापकों के संबंध में अंतराष्ट्रीय टीम ने अपनी रिपोर्ट में जो टिप्पणियां दी है वे भी इसी महत्व की है :-

"हमारा विश्वास है कि जब तक अध्यापन कार्य अपना दर्जा नही बना लेता, जो कि व्यक्ति और कार्य के प्रकार दोनों में प्रतिबिम्बित हो तब तक यह अपनी आर्थिक, सामाजिक स्थिति सुदृढ़ नहीं बना सकता और न ही जिस समर्थन की इसे आवश्यकता है उसे प्राप्त कर सकता है। हमें इस तथ्य का सामना करना होगा कि अध्यापक और शिक्षाविद ही मुख्यतः अध्यापन के व्यावसायिक स्तर के लिए जिम्मेदार है।"

मैकनायर समिति (1994) :-

मैं रिपोर्ट पेश की, कि "अध्यापन की पूरी योग्यता के दो भाग है उसकी शिक्षा और प्रशिक्षण में प्रमुखता उसके व्यावसायिक कर्तव्यों में प्रविष्ट

होने की है तथा आगे का प्रशिक्षण कार्य कर रहे एक अध्यापक के तौर पर बिताये कुछ समय के बाद होता है।''

1.3 शिक्षक अभिवृत्ति :-

किसी वस्तु-व्यक्ति अथवा विचार के प्रति व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार करेगा यह बहुत उस व्यक्ति से उनके प्रति बनी अभिवृत्त्यिों पर निर्भर करता है। व्यवहार ही नहीं व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व भी उसकी अभिवृत्तियों में अनुकूल ही ढलता है। जो कुछ भी व्यक्ति सीखता है और आदतों तथा रूचि आदि को ग्रहण करता है वे सभी उसकी अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होता है।

ट्रेलर्स ने कहा कि ''व्यवहार को कोई एक दिशा प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया के लिये आवश्यक, तत्परता प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया के लिये आवश्यक तत्परता का नाम अभिवृत्ति है। अर्थात अगर किसी को किसी वस्तु के प्रति सकारात्मक अभिवृति है तो वह उस वस्तु के प्रति आकर्षित होगा, उसे पाने के लिये प्रयत्न करेगा और अगर नकारात्मक अभिवृत्ति हुई तो वह उससे दूर भागेगा और यहां तक कि वह उसके नाम से ही चिढ़ने या उत्तेजित होने लगेगा।

मकेशी एवं डोयल ने कहा कि ''अभिवृत्ति को हम किसी एक वस्तु से जुड़े हुये प्रत्ययों विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणाओं के संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते है। अर्थात् ''वस्तु के प्रति बनी हुई समस्त धाराणाओं, विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणाओं को अभिवृत्ति के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। ये एक प्रकार से अभिवृत्ति के विभिन्न अवयवों का निर्माण करते है। अभिवृत्ति के मुख्य रूप से तीन अवयव विचारात्मक, क्रियात्मक और प्रभावात्मक होतें है। धारणाओं, प्रत्ययों ओर विश्वासों का संबंध विचारात्मक अवयव से है आदतों का क्रियात्मक तथा अभिप्रेरणाओं का प्रभावात्मक अवयवों से सीधा संबंध होता है। इस रूप में व्यक्ति जो भी किसी वस्तु के बारे में सोचता है, अनुभव करता है और अपनी जिस रूप में

प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, यह सब उसकी उस वस्तु के प्रति अभिवृत्ति को ही व्यक्त करता है।

सोरेन्सन ने कहा है कि ''अभिवृत्ति किसी वस्तु के प्रति एक विशिष्ट भावना है। इसलिए इसमें उस वस्तु/चाहे वह व्यक्ति, विचार या पदार्थ कुछ भी हो, उसे जुड़ी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित होती है। यह आंशिक रूप में तार्किक और आंशिक संवेगात्मक होती है तथा किसी भी व्यक्ति में जन्मजात न होकर उपार्जित होती है।'' अर्थात् कोई व्यक्ति किसी अभिवृत्ति के प्रभाव में कर एक निश्चित प्रकार का व्यवहार क्यों करता है। अभिवृत्तियों के द्वारा किसी वस्तु या विचार के प्रति एक विशेष प्रकार की रूचि-अरूचि पसंद-नापंसद पनप जाती है, जिसकी बुनियादी कुछ हद तक कारण अवश्य की इससे जुड़े रहते है। व्यक्ति में ये बाते जन्मजात नहीं होती, अनुभव के द्वारा वातावरण ही इन्हें सिखाता है।

व्हिटकर ने कहा कि ''अभिवृत्ति (शरीर अथवा मस्तिष्क की) पूर्व नियोजन अथवा तत्परता की वह अवस्था है जो सार्थक उद्दीपकों के प्रति पूर्व निश्चित तरीके से प्रतिक्रिया करने में सहायक होती है।'' अर्थात् अभिवृत्ति को ऐसी प्रवृत्ति या तैयारी की मानसिक या शारीरिक अवस्था मानती है जो व्यक्ति को किसी एक परिस्थिति में एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को प्रेरित करती है। व्यक्ति की किसी विशेष उद्देपक के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया होगी, यह उसके प्रति बनी अभिवृत्ति पर निर्भर करेगा।

परिणाम स्वरूप अभिवृत्ति का आशय शिक्षकों को द्वारा व्यक्त मन से लिया गया है। शिक्षकों का दृष्टिकोण जो किसी प्रकार के व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह अर्जित प्रवृत्ति है जो शिक्षकों को किसी विशेष वस्तु या वस्तुओं के प्रति एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को तत्पर करती है बशर्ते कि वातावरण जन्म परिस्थितियों में कोई प्रतिकूल परिवर्तन न हो यह पूर्वधारणा होती है कि जो उनके प्रति स्वीकारात्मक या नकारात्मक ढंग से प्रतिक्रियायें करवाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत को शिक्षा की एक ऐसी विरासत मिली है, जिसमें भारत जैसे विकासशील देश को शिक्षा के गुणात्मक स्वस्थ्य को स्थापित करने के लिए कठोर संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है।

सन् 1985 के शिक्षा को चुनौती नामक दस्तावेज के अनुसार नई शिक्षा नीति ऐसी होनी चाहिये जो भविष्य की चुनौतियों का सामना कर सके एवं शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार ला सके। इस दृष्टि से शिक्षण व्यवसाय की विशेष भूमिका है।

शिक्षा का संबंध अनिवार्यतः भविष्य से होता है और इसका स्वरूप सर्वांगीण होना आवश्यक है। इसलिए इसमें योगदान करने वाले हर व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह शिक्षा को इस परिप्रेक्ष्य में देखे।

1.4 समस्या कथन :-

"प्रारंभिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों (शिक्षकों) की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन"

1.5 शोधकार्य में प्रयुक्त शब्दावली व अर्थ :-

शिक्षा का अर्थ :-

प्राचीन भारत में शिक्षा को विद्या के नाम से जाना जाता था। विद्या शब्द की उत्पत्ति विद् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है जानना। इस प्रकार विद्या शब्द का अर्थ ज्ञान से है। हमारे प्राचीन में ज्ञान को मानव का तृतीय नेत्र कहा गया है जो अज्ञानता दूर कर सत्य के दर्शन कराने में सहायक होता है।

शिक्षा का शाब्दिक अर्थ :-

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा का मूल शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है विद्या प्राप्त करना अर्थात् ''ज्ञानार्जन करना।'' अंग्रेजी भाषा में शिक्षा का आशय 'एजुकेशन' से है। यह शब्द लैटिन भाषा के एजुकेटम से बना है जिसका अर्थ है आन्तरिक से आगे बढ़ना। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ की दृष्टि

से बालक की आंतरिक शक्तियों, प्रतिभाओं और क्षमताओं को बाहर की ओर अग्रसर कर विकसित करना शिक्षा है।

अभिवृत्ति :–

अनुसंधानों की विभिन्न अवस्थाओं में महत्वपूर्ण विषयों व वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया गया है। कुछ अभिवृत्तियों अल्पावस्था में सीखी जाती है और स्थिर बनी रहती है, कुछ परिवर्तित होती है और किशारोवस्था और युवावस्था में अर्जित की जाती है और बदलती रहती है। सामाजिक परिस्थितियों के प्रति उनकी अभिवृत्तियों जीवन की प्रथमावस्था में ही बन जाती है और बनी रहती है तथा अधिगम से वे स्थिर और स्थायी बनती जाती है। प्रस्तुत अनुसंधान में अभिवृत्तियों यथा–अध्यापन व्यवसाय संबंधी, अध्यापन संबंधी, छात्र केन्द्रित व्यवहारों संबंधी, शैक्षिक प्रक्रिया संबंधी, छात्रों संबंधी तथा अध्यापकों संबंधी को अध्ययन हेतु चयनित किया गया है।

शिक्षण/अध्यापन :–

किसी शैक्षिक संस्था में छात्रों को पढ़ाने या सिखाने की क्रिया। व्यापक रूप में इसका तात्पर्य होता है ऐसी परिस्थितियों, दशाओं तथा क्रियाओं की व्यवस्था करने से जिससे बालक सीख सके।

संयुक्त प्रयास से शिक्षण प्रक्रिया के चलाने के लिये अध्ययन–अध्यापन (लर्निंग–टीचिंग) पद का प्रयोग किया जाता है, जिसमें अध्ययन का दूसरा स्थान है। प्रथम आवश्यक कार्य है, छात्र का स्वयं का सीखना और उसमें सहायता देने का कार्य शिक्षक का है।

शिक्षण व्यवसाय :–

परम्परागत चार प्रमुख व्यवसायों कानून, शिक्षा, धर्म ओर चिकित्सा में से एक शिक्षा व्यवसाय भी माना जाता है। इस व्यवसाय में मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। इसमें आचरण के नियंत्रण के लिए

कुछ व्यावसायिक नैतिकता होनी चाहिए जिसमें मानव अधिकारों के प्रति आस्था, सह-कर्मियों के साथ सहयोग, सहकारिता कार्य के प्रति ईमानदारी, निष्ठा, विद्यालय के प्रति कर्तव्य परायणता एवं प्रजांतांत्रिक भावना और समुदाय के कल्याण तथा सामाजिक मूल्यों की वृद्धि करने की दृढ़ इच्छा होनी चाहिए।

बाल केंद्रित शिक्षा :-

बाल केंद्रित शिक्षा का अर्थ है- छात्र के स्वाभाविक विकास का अध्ययन करके उसकी आवश्यकताओं योग्यताओं ओर रूचियों आदि के अनुसार हो। शिक्षा का केंद्र बिंदु न तो अध्यापक हो और न ही विषय अथवा ज्ञान। शिक्षा के नाटक में छात्र मुख्य पात्र का स्थान ले। वह ही 'हीरो' की भूमिका निभाह। अन्य पात्र केवल सहायक हों।

शिक्षक :-

किसी शिक्षा संस्था में बालकों या विद्यालयों को पढ़ाने का कार्य करने वाला व्यक्ति। इसे अध्यापन करने के लिए स्वयं उपयुक्त शिक्षा प्राप्त करना तथा किसी संस्था से व्यावसायिक प्रशिक्षण लेना आवश्यक होता है।

कक्षा अध्यापन :-

प्राचीन काल से अध्यापन का तरिका यह रहा है कि एक शिक्षक अनेक छात्रों को कक्षा में बिठाकर पढ़ाता है। कक्षा में एक स्तर के प्रायः सभी छात्रों को एक साथ बिठा लिया जाता था। सामूहिक शिक्षण की यह प्रणाली आज दिन तक वैसी ही चली आ रही है। नए कौशल और नया ज्ञान देने में तथा सर्वनिष्ठ त्रुटियों और मूलों को सुधारने में यह बड़ी उपयोगी है।

शिक्षा-कोश

1.6 शोध के चर :-

स्वतंत्र चर

(1) लिंग (2) उम्र (3) शैक्षणिक योग्यता

(4) व्यावसायिक योग्यता (5) विद्यालय

(6) अनुभव (7) क्षेत्र

आश्रित चर

अभिवृत्ति

1.7 प्रस्तुत शोध अध्ययन की आवश्यकता

संपूर्ण शिक्षा प्रणाली की प्रक्रिया की श्रंखला में अध्यापक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। शासकीय स्तर पर शिक्षा की चाहे कितनी ही मनोहर योजना बना ली जाए किन्तु अधयपक यदि उसे ठीक ढंग से कार्यान्वित न करे तो वह योजना कदापि सफल नहीं हो सकती। प्राथमिक स्तर पर विशेष ध्यान रखते हुए शिक्षा का संस्कार बालकों पर करने की जिम्मेदारी अध्यापक पर ही होती है। छात्रों के सामने आवश्यक एक आदर्श होता है। अध्यापक ही शिक्षा का आधर स्तंभ है। शिक्षा के हर कार्य में वह नेतृत्व करता है। इसी प्रकार अध्यापक को समाज नेतृत्व करने वाला समाज रचियता कहा जाता है।

महान दार्शनिक एवं विचारक अरविन्द घोष ने भी शिक्षक के बारे कहा है "अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति चतुर माली होती है जो संस्कारों की जड़ों में अपने ज्ञान की खाद देते है और अपने श्रम से सींच सींच कर उन्हे महाप्राण शक्तियां बना देते हैं।" अध्यापक किसी भी महान पुरूष की अपेक्षा बड़ा होता है क्योंकि महानतम व्यक्तियों को अध्यापक ही पढ़ाता है।

उपरोक्त सब बातें हमें इस बात की ओर खींचती जा रही है कि शिक्षा कार्य में अध्यापक की भूमिका सर्वश्रेष्ठ है उसी पर सारे समाज व छात्रों का विश्वास है। हमारेदेश को अगर अच्छा जीवन फिर से कोई प्रदान कर सकता है तो वह है अध्यापक।

वर्तमान स्थिति के अनुसार कोई भी माता-पिता अपने बेटे को शिक्षक नहीं बनाना चाहता है। सभी को लगता है कि अपना बेटा डॉक्टर, इंजीनियर

वकील, अधिकारी बनना चाहिए। सभी अपने अपने तरीके से प्रयास करते हैं। जब उनके सभी रास्ते बंद होते हैं तब वह शिक्षक पेशा स्वीकारते है। इच्छा न होने के बावजूद पेशा स्वीकारते हैं तो इसका उनके अध्यापन पर प्रभाव पड़ता है या नहीं यह जानने हेतु शोधकर्ता ने प्रारंभिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की अध्यापन व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

1.8 समस्या का सीमांकन

1. प्रस्तुत अध्ययन में महाराष्ट्र राज्य के नागपुर जिला के तीन तहसिल (काटोल, कलमेश्वर, नरखेड़) को ही शामिल किया गया है।
2. इस अध्ययन में प्रारम्भिक विद्यालयों के मात्र 129 शिक्षकों को ही चुना गया है।
3. प्रस्तुत अध्ययन में शिक्षक एवं शिक्षिकाओं दोनों का ही चयन किया गया है।
4. ग्रामीण एवं शहरी विद्यालयों को भी लिया गया है।

1.9 शोध के उद्देश्य :-

1. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में लिंग के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में स्थान (क्षेत्र) के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
3. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में शाला के प्रकार के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
4. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में अनुभव के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
5. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में शैक्षणिक योग्यता के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

6. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में व्यावसायिक योग्यता के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

7. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में उम्र के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

1.10 शोध कार्य की परिकल्पनाएँ :-

1. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में लिंग के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

2. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में स्थान के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

3. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में शाला के प्रकार के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

4. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में अनुभव के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

5. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में शैक्षणिक योग्यता के आधार पर ध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

6. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में व्यावसायिक योग्यता के आधार पर ध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

7. प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षकों में उम्र के आधार पर अध्यापन अभिवृत्ति में सार्थक अंतर नही है।

Regional Institute of Education
LIBRARY